International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(3): 137-139

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(3): 137-139
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 23-03-2021
Accepted: 30-04-2021

डॉ. रमा सिंह
सह-आचार्या, देशबन्धु महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, कालकाजी, नई दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
डॉ. रमा सिंह
सह-आचार्या, देशबन्धु महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, कालकाजी, नई दिल्ली, भारत

शतक-काव्य की परम्परा

डॉ. रमा सिंह

सारांश
संस्कृत काव्यजगत् में शतककाव्य की एक विस्तृत परम्परा रही है। शृङ्गार, नीति, भक्ति, वैराग्यादि इसके विषय रहे हैं, जिनमें आत्माभिव्यञ्जना की प्रधानता होती है। भावातिरेक, कल्पना और संगीत इसके प्रमुख तत्त्व रहे हैं। भाषा और भाव के समन्वय के साथ-साथ संक्षिप्तता इसका एक अनिवार्य घटक है। प्रस्तुत शोधालेख के माध्यम से शतककाव्य की परम्परा को संक्षिप्तरूप में प्रस्तुत किया गया है।

कूटशब्द : नीति, भक्ति, शृङ्गार, संगीत, स्तोत्र, मुक्तक, भावातिरेक, खण्डकाव्य, ब्रह्म, जगत्।

प्रस्तावना

शतककाव्य की परम्परा:

शतक-काव्य संस्कृत साहित्य की अमूल्य देन है। इसके माध्यम से कवि कम से कम शब्दों से बड़ी बात कहने में समर्थ होता है। शतक काव्य की संक्षिप्तता का गुण आज के व्यस्त-जीवन वाले समाज की उपयोगिता है। शतक-काव्यों के सूक्त्यात्मक पद्य नैतिक आदर्शों के निरूपण द्वारा अपने महत्त्व का बोध कराते हैं। शतक-काव्यों में पद्यों की संख्या सौ (100) होती है, परन्तु इनके पाठ-भेद एवं पाठान्तर द्वारा पद्यों की संख्या को कम या अधिक कर दिया जाता है, मूल रूप में शतक में सौ ही पद्य होते हैं।

आचार्य भामह (पाँचवीं-छठी शताब्दी) ने काव्यालंकार में 'अनिबद्ध-काव्य' नामक विधा का परिचय दिया है।[1] वामन ने इस विधा को 'मुक्तक' नाम से अभिहित किया। विश्वनाथ एवं अन्य आचार्यों ने शतक-काव्य को खण्डकाव्य के अन्तर्गत (मुक्तक विधा में) स्वीकार किया।[2] खण्डकाव्य गेय होने से गीतिकाव्य कहे जाते हैं। संस्कृत साहित्य की प्रत्येक काव्य-रचना गेय होने से गीतिकाव्य कही जा सकती है। शास्त्रीय दृष्टि से 'शतक-काव्य' को खण्डकाव्य कहा गया है। खण्डकाव्य में जीवन के प्रत्येक पक्ष का सर्वांगीण वर्णन किया जाता है। महाकाव्य में विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों की योजना का पर्याप्त अवसर उपलब्ध

---

1 (क) भामह - काव्यालंकार-1.18
सर्गबन्धोऽभिनेयार्थं तथैवाराख्यायिका कथे।
अनिबद्धंच काव्यादि तत्पुनः पंचधोच्यते।।
(ख) *वही*, 1.30
अनिबद्धं पुनर्गाथाश्लोकमात्रापि तत्पुनः।
युक्तं वक्त्रस्वभावोक्त्या सर्वमेवैतदिष्यते।।

2 विश्वनाथ - साहित्यदर्पण-6, 314-15
छन्दोबद्धपदं पद्यं तेन मुक्तकेन मुक्तकम्।
द्वाभ्यां तु युग्मकं संदानितकं त्रिभिरिष्यते।।

होता है जबकि खण्डकाव्य की सीमाएँ निर्धारित होती हैं। मानव-जीवन के किसी एक पक्ष का उद्घाटन अथवा अन्तरात्मा के किसी एक ही पटल का चित्रण शतक काव्यों का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है। जहाँ महाकाव्य में मानव जीवन की समग्रता का प्रसार है, वहाँ शतक काव्यों में जीवन की एकदेशीयता की तन्मयता है। प्रधानतया इसमें एक ही विषय वर्णित रहता है - श्रृंगारिक, धार्मिक अथवा नैतिक। शतक-काव्य मुक्तक होने के साथ-साथ अपने नाम शतक को भी सार्थक करता है। लक्षण-ग्रन्थों में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि यह विधा प्राचीन काल में प्रचलित तो थी परन्तु आचार्यों द्वारा मान्य नहीं थी।

प्राचीन काल में गोष्ठियों का प्रचलन था। कविगण इन गोष्ठियों में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत किया करते थे तथा भावक उनके गुण एवं दोष पर विचार करते थे। इस प्रकार की गोष्ठियों में किसी एक कवि के द्वारा पूरे महाकाव्य का वाचन सम्भव नहीं था इसलिए निदर्शन के रूप में कवि अपने 'महाकाव्य' में से अपनी रुचि के स्थलों को चुनकर अथवा कुछ कवि स्वतंत्र रूप से अपने ही पद्यों का वाचन करते थे। यही परम्परा धीरे-धीरे खण्डकाव्य के रूप में जानी जाने लगी। सर्वप्रथम महाकवि कालिदास ने 'मेघदूत' एवं 'ऋतुसंहार' नामक खण्डकाव्यों की रचना की। यही खण्डकाव्य अनेक रूपों में विकसित हुए, यथा - श्रृंगारिक काव्य एवं स्तोत्र काव्यादि।

शतक काव्यों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व उसकी भावमयता है। दूसरा तत्त्व भावान्विति, तीसरा संक्षिप्तता, चौथा गेयता, पाँचवां सहज अभिव्यक्ति और छठा प्रत्येक पद्य का स्वतंत्र अस्तित्व है। शतक-काव्यों में नीति तत्त्वों का, भक्ति का, प्रेम का, वैराग्य का सुन्दर चित्रण मिलता है। नारी-प्रेम की उदात्तता तथा विशुद्धता का परिचय हमें प्राप्त होता है। प्रकृति चित्रण को भी इसमें प्रमुख स्थान मिला है। बाह्य प्रकृति और अन्तःप्रकृति इन दोनों का परस्पर प्रभाव बड़ी सजीवता के साथ दिखाया जाता है। संयोग और वियोग दोनों में ही प्रकृति मानव-हृदय पर अपना प्रभाव डालने से विरत नहीं होती। उल्लसित हृदय को प्राकृतिक सौन्दर्य द्विगुणित कर देता है परन्तु वही दृश्य विषण्ण हृदय में विषाद की रेखा को और भी गहन बना देता है। इस प्रकार ये शतक काव्य प्राकृतिक दृश्यों को चलचित्रों के समान रसिकों के सामने उपस्थित कर अपने सौन्दर्य का परिचय देते हैं।

प्राचीन आचार्यों ने काव्य का प्रयोजन सद्यःपरनिर्वृति के साथ ही यश, अर्थ, व्यवहारज्ञान, शिवेतरक्षति और कान्तासम्मित उपदेश भी बताया है।[3] ये सभी प्रयोजन शतक-काव्य में मिलते हैं। इन शतकों में जीवन का व्यवहारज्ञान कराने का प्रयोजन मुखर हो उठा है। बहुधा अन्योक्तियों के माध्यम से भी जीवन के सत्यों का काव्यमय उपस्थापन किया गया है। शान्तिपरक मुक्तकों में जीवन की क्षणभंगुरता की बात बलपूर्वक उपस्थित की गयी है। देवस्तुतिपरक सूक्त धार्मिक एवं दार्शनिक विकास के संदर्भ में नया स्वरूप ग्रहण कर स्तोत्र साहित्य के रूप में आये हैं।

श्रृंगारपरक काव्यों में महाकवि भर्तृहरि का ' श्रृंगार-शतक', महाकवि अमरुक का अमरुकशतक आता है। ये दोनों ही शतक-काव्य श्रृंगार रस के दोनों पक्षों (संयोग-वियोग) का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत करते हैं। प्रत्येक पद्य रसाप्लावित होने से सहृदय (श्रोताओं) रसिकों के हृदय को आकृष्ट करता है। ये पद्य मुक्तक होते हुए भी सर्गबन्ध के तुल्य आह्लादनीयता को प्रदान करते हैं। नवमी शताब्दी के 'आचार्य आनन्दवर्धन' ने अमरुक के पद्यों का उल्लेख करते हुए कहा है कि ये मुक्तक होने पर भी इस प्रकार श्रृंगार रस के निष्यन्दी हैं। मानो एक-एक पद्य के पीछे एक पूरे महाकाव्य की योजना है।[4]

नीति-प्रधान काव्यों में महाकवि भर्तृहरि का नीतिशतक अपना महनीय स्थान रखता है। नीतिकाव्य की परम्परा का मूल हमें धर्म एवं दर्शन के ग्रन्थों में मिलता है। महाकवि भर्तृहरि ने भारतीय समाज के नैतिक आदर्शों का अंकन किया है। नीतियाँ महान चरित्र के उत्थान में सहायक सिद्ध होती हैं।

महाकवि भर्तृहरि का तीसरा शतक 'वैराग्य शतक' है। इसमें इन्होंने दुःख का हेतु संसार को माना है और उससे विरक्त हो जाने की अपनी भावना को व्यक्त किया है। यही कारण है कि भर्तृहरि को योगी भी कहा जाता है। भर्तृहरि की स्वाभाविक व सरल भाषा उनके काव्य को और अधिक मनोहारी बनाती है। वे सरल से सरल शब्दों में गम्भीर बात को कहते हैं, जो जनसाधारण के लिए भी बोधगम्य होती है।[5] यह शतक भर्तृहरि का सर्वस्व प्रतीत होता है। वे सन्तोष को परम सुख और वैराग्य को इसका एकमात्र साधन मानते हैं।[6]

भक्ति भावना प्रधान काव्य जिन्हें स्तोत्र-काव्य कहा जाता है इसके अंतर्गत महाकवि मयूर का 'सूर्यशतक' और महाकवि बाण का 'चण्डीशतक' आता है। महाकवि मयूर को कुष्ठ रोग हो गया था जिसके निवारणार्थ उन्होंने सूर्य की स्तुति में पद्यों की रचना की। इसमें सूर्य के गुणों का वर्णन करते हुए उसे कष्ट-निवारक देव स्वीकार किया है। आज भी वैज्ञानिकों द्वारा सूर्य की किरणों को कुछ रोग निवारण में सहायक माना है। इससे महाकवि मयूर के वैद्यक गुणों से सम्पन्न होने का ज्ञान होता है। यह काव्य कवि के भक्त हृदय की सरस धारा है, जो भगवान के विशाल हृदय, असीम अनुकम्पा और दीन जनों पर अकारण स्नेह के रूप में फूट पड़ी है। कवि ने अपने हृदय की दीनता तथा दयनीयता को कोमल शब्दों में प्रकट कर सच्ची भावुकता का परिचय दिया है। भाषा सरल व स्वाभाविक है।

महाकवि बाणभट्ट ने 'चण्डीशतक' काव्य में शिव की पत्नी पार्वती के चौदह रूपों का सुन्दर वर्णन किया है। साथ ही चण्डी के रूप में महिषासुरमर्दिनी देवी की शक्ति का वर्णन किया है। इसके द्वारा कवि ने देवी को कष्टनिवारक व पापों का नाश करने वाली प्रदर्शित किया है। भाषा रोचक एवं स्वाभाविक है।

शंकराचार्य ने 'अद्वैत-वेदान्त' के तत्त्वों के निरूपण में शतश्लोकी की रचना की। यद्यपि शंकराचार्य अद्वैत वेदान्त के महनीय आचार्य हैं तथापि उन्होंने विभिन्न काव्यों की रचना द्वारा अपने कवित्व का परिचय दिया है। शतश्लोकी में जीव, ब्रह्म, जगत् एवं आत्मा का

---

3 काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे विश्वेतरक्षतये
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।। काव्यप्रकाश-1.2

4 मुक्तेषु हि प्रबन्धेष्विव रसबन्धाभिनिवेशिनः कवयो दृश्यन्ते।
यथा ह्यमरुकस्य कवेर्मुक्तकाः श्रृङ्गाररसस्यन्दिनः प्रबन्धायमानाः प्रसिद्धा एव।। ध्वन्यालोक-तृतीय उद्योत, पृ. 175

5 वैराग्यशतक, श्लोक-72

6 *वही*, श्लोक-88

विवेचन किया गया है। कर्म को बन्धन का कारण बताया है। कर्मों का क्षय ही मुक्ति होती है। ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है, जगत मिथ्या है। इस प्रकार उन्होंने जीव और ब्रह्म के ऐक्य को स्वीकार किया।

शतक-काव्यों का प्रत्येक पद्य रस, भाव, दशा, तथ्य अथवा परिस्थिति का चित्र पाठक के समक्ष उपस्थित कर देता है। यहाँ जिन शतककाव्यों की चर्चा की गई है वे अपने आकार की संक्षिप्तता को, अपने विचारों (वर्णनों) की उच्चता से विस्तृत रूप प्रदान करते हैं। निश्चत रूप से ही शतक-काव्य महाकाव्य के समान आह्लादक एवं लोकप्रिय होते हैं तथा जनमानस को प्रभावित करते हैं।

भाषा-शैली की उत्कृष्टता, वर्णनों की सरलता एवं संक्षिप्तता तथा रस-पेशलता आदि शतक-काव्यों की उत्कृष्टता के द्योतक हैं। शतक-काव्य इस बात की पुष्टि करता है कि 'साहित्य समाज का दर्पण' है। इसके पद्य श्रृंगारिक, नैतिक, धार्मिक एवं दार्शनिक मूल्यों के परिचायक होते हैं। जीवन के मूलभूत सिद्धान्तों का वर्णन होने से इनको सर्वगुण-सम्पन्न काव्य कहा जा सकता है।

शतक-काव्य अर्थात् खण्डकाव्य की यह महती विशेषता है कि ये 'गागर में सागर' भरने के समान अपने एक ही पद्य में सम्पूर्ण सार को व्यक्त करने का सामर्थ्य रखते हैं। शतककाव्यों की रचना ने भारतीय कवि वर्ग को प्रोत्साहित किया और यह परम्परा निरन्तर गतिशील रही। ये गेयता रूप गुण के कारण रस एवं भाव की सम्पदा से युक्त होते हैं। सहृदय श्रोताओं एवं पाठकों के हृदय में स्थित रहित आदि भावों को उद्बुद्ध करते हैं और सहृदय पाठक सांसारिक क्लेशों से दूर रहकर रसमग्न होकर अनुपम आनन्द की अनुभूति करते हैं। यही रस उत्तम काव्य की विशेषता है। इसी कारण इन शतककाव्यों को उत्तम काव्य की श्रेणी में रखा जा सकता है।

सन्दर्भ

1. काव्यप्रकाश, सम्पादक - डॉ. नगेन्द्र, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, प्रथम संस्करण, विक्रम संवत्-2017.
2. काव्यालङ्कार, आचार्य भामह, भाष्यकार - शर्मा, देवेन्द्रनाथ, बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, द्वितीय संशोधित संस्करण, 1985.
3. ध्वन्यालोक, सम्पादक - पं. दुर्गाप्रसाद, मुंशीराम मनोहरलाल दिल्ली, 1983.
4. भर्तृहरिशतकत्रयम्, व्याख्याकार - झा, नरेश, होसिंग, जगन्नाथ शास्त्री एवं त्रिवेदी, राधेलाल, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण-2008 ई.
5. भारतीय साहित्य का इतिहास, लेखक - विण्ट्रनिट्ज, अनूदित - झा, सुभद्रा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1978.
6. शतकत्रयम्, भर्तृहरि, संपादक - कोसाम्बी, श्रीदामोदर धर्मानन्द, भारतीय विद्या ग्रन्थावली, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, 1946.
7. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, उपाध्याय, रामजी, रामनारायण लाल, वेणीमाधव, इलाहाबाद, 1961.
8. संस्कृत साहित्य का इतिहास, उपाध्याय, आचार्य बलदेव, शारदा निकेतन, वाराणसी, दशम संस्करण, 2001.
9. संस्कृत साहित्य का इतिहास, गैरोला, वाचस्पति, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1978.
10. संस्कृत साहित्य का इतिहास, शर्मा, उमाशंकर, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण, 2014.
11. साहित्यदर्पण, व्याख्याकार - शास्त्री, शालिग्राम, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, नवम संस्करण, 1977002
12. A History of Sanskrit Literature, Keith, A.B., Oxford University Press, London; c1920.
13. Nīti and Vairāgya Śatakas of Bhartṛhari, by Kāle, M.R., Motilal Banarsidas, Delhi, Seventh Edition-1971.